पाठ्यक्रम - २

२.अ सर्व कल्याणकारी महामंत्र- णमोकार

''णमोकार महामंत्र'' (प्राकृत भाषा)	नमस्कार महामंत्र (हिन्दी भाषा)
णमो अरिहंताणं	अरिहंतों को नमस्कार
णमो सिद्धाणं	सिद्धों को नमस्कार
णमो आइरियाणं	आचार्यों को नमस्कार
णमो उवज्झायाणं	उपाध्यायों को नमस्कार
णमो लोए सव्व साहूणं	लोक में (स्थित) सभी साधुओं को नमस्कार

''संघर्षमय जीवन का उपसंहार वह नियमरूप से हर्षमय होता है, धन्य!''

णमोकार मंत्र की महिमा

''एसो पंच णमोयारो, सव्व पावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं॥''

यह पंचनमस्कार मंत्र सभी पापों का नाश करने वाला है तथा सभी मंगलों में प्रथम (श्रेष्ठ) मंगल है।

चत्तारि मंगलं-अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं।

चत्तारि लोगुत्तमा-अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो।

चत्तारि सरणं पव्वज्जामि-अरिहंते सरणं पव्वज्जामि, सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि।

णमोकार मंत्र का स्वरूप -

अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, एवं साधु इन पाँच परमेष्ठियों को जिस मंत्र में नमस्कार किया गया है उसे णमोकार मंत्र कहते है। णमोकार मंत्र सभी मंत्रों में श्रेष्ठ अर्थात प्रधान है। इसमें किसी व्यक्ति विशेष को नमस्कार नहीं किया गया है अपितु शास्त्रों में कहे गए विशिष्ट गुणों से सहित परम-आत्माओं को नमस्कार किया गया है।

णमोकार मंत्र के अन्य नाम -

इस मंत्र के अन्य नाम भी कहे जाते हैं, जैसे महामंत्र, मूलमंत्र, मंत्रराज, मृत्युञ्जयी मंत्र, अपराजित मंत्र, पंच नमस्कार मंत्र, अनादि-अनिधन मंत्र, सर्वकालिक मंत्र, त्रैकालिक मंत्र, मंगल मंत्र इत्यादि।

णमोकार मंत्र का इतिहास -

पंच-परमेष्ठी अनादिकाल से होते आ रहे हैं तथा आगे भी अनंतकाल तक होते रहेंगे, इस अपेक्षा से यह मंत्र अनादि-अनिधन है इसका कोई रचयिता नहीं है। लगभग २००० वर्ष पूर्व प्रथम शताब्दी में आचार्य पुष्पदन्त एवं आचार्य भूतबली मुनिराज द्वारा रचित सिद्धांत ग्रन्थ षट्खण्डागम जी में मंगलाचरण के रूप में पूर्ण एवं शुद्ध णमोकार मंत्र को सर्वप्रथम लिपिबद्ध किया गया।

णमोकार मंत्र में पदादि -

यह मंत्र प्राकृत भाषा में आर्या छंद के रूप में लिखा गया है। इस मंत्र का निरन्तर स्मरण करने वाले साधक का चित्त प्रसन्नता और निर्मलता का अनुभव करता है। इसमें ५ पद, ३५ अक्षर तथा ५८ मात्राएँ हैं।

संसार परिभ्रमण का कारण

हमने अनंतकाल तक अनंत पदार्थों की चर्चा की उन्हीं का परिचय प्राप्त किया पर उस सच्चिदानंद आत्मा की न चर्चा की और न उस आत्मतत्त्व का चिंतन ही नहीं किया जिससे अनंत पदार्थों में हमारी गहरी आसक्ति रही, उन्हीं से जुड़ते व टूटते रहे और अपने अनंत वैभव से युक्त आत्मा को भूल गए। पर पदार्थों में ही सुख का अन्वेषण करते रहे।

'सकलज्ञेय ज्ञायक' विनती में भी जीव की ६ भूल का दिग्दर्शन करते हुए प्रथम भूल यही बताई कि जीव अपने को भूलकर संसार में परिभ्रमण करता रहा।

णमोकार मंत्र की महिमा –

इस मंत्र के स्मरण और चिन्तन-मनन से समस्त बाधाएं दूर हो जाती हैं।मरणोन्मुख कुत्ते को जीवन्धर कुमार ने णमोकार मंत्र सुनाया था, जिसके प्रभाव से वह पाप पङ्क से लिप्त श्वान मरणोपरान्त स्वर्ग में देव हो गया था। अत: सिद्ध है कि यह मंत्र आत्म विशुद्धि का बहुत बड़ा कारण है।

णमोकार मंत्र और जाप –

जो मन को एकाग्र, शांत कर दे अर्थात मंत्रित, नियन्त्रित कर दे उसे मन्त्र कहते हैं।

मन को एकाग्र करने हेतु यथा – तथानुपूर्वी मन्त्र का जाप, पाठ कर सकते हैं जैसे णमो आइरियाणं से शुरू करना इत्यादि। यह मन्त्र १८४३२ प्रकार से बोला जा सकता है। मन्त्र को पवित्र अथवा अपवित्र किसी भी दशा में पढ़ सकते हैं। विशेष इतना है कि पवित्र द्रव्य, क्षेत्र, काल में ही मुख से उच्चारण करें अन्यथा मन में ही मनन, चिन्तन करना चाहिए।

णमोकार मंत्र के जाप की विधियाँ

१. बैखरी – उच्चारण पूर्वक लय से णमोकार मन्त्र का शुद्ध पाठ/ उच्चारण करना।

२. उपांशु – उच्चारण जिसमें ओष्ठ एवं जिह्वा हिलती है मगर आवाज बाहर नहीं आती।

३. पश्य – मन ही मन णमोकार मंत्र का जाप जिसमें न ओष्ठ हिलते हैं और न ही जिह्वा।

४. परा – णमोकार मन्त्र के जाप में पञ्च परमेष्ठियों के मूलगुण एवं स्वरूप में काय का ममत्व छोड़कर लीन हो जाना।

णमोकार मंत्र और जाप

जाप पूर्व एवं उत्तर दिशा की ओर मुख करके खड्गासन, पद्मासन, सुखासन अथवा अर्धपद्मासन में स्थित होकर देना चाहिए।

आचार्य श्री ने मूकमाटी में नौ की संख्या को अक्षय स्वभाव वाली, अजर, अमर, अविनाशी, आत्म तत्त्व की उद्बोधिनी माना है। नौ के अंक की यह विशेषता है कि इसमें २, ३ आदि संख्याओं का गुणा करने तथा गुणनफल को जोड़ने पर नौ (९) ही शेष बचता है। जैसे –

९ × २ = १८ १+८ = ९

९ × ३ = २७ २+७ = ९

९ × ९ = ८१ ८+१ = ९

अत: कम से कम नौ बार णमोकार मन्त्र का जाप अवश्य करना चाहिए।

णमोकार मंत्र को तीन श्वासोच्छवास में पढ़ना चाहिए। पहली श्वास (ग्रहण करते समय में णमो अरिहंताणं, उच्छवास (छोड़ते समय) में णमो सिद्धाणं, दूसरी श्वास में णमो आइरियाणं उच्छवास में णमो उवज्झायाणं और तीसरी श्वास में णमो लोए और उच्छवास में सव्व साहूणं बोलना चाहिए। १०८ बार के जाप में कुल ३२४ श्वासोच्छवास होते हैं।

णमोकार के पदों का ध्यान क्रमश: सफेद, लाल, पीला, नीला और काले रंग में करना चाहिए अर्थात श्वांस की तूलिका से शून्य की (आकाश की) पाटी पर क्रमश: इन रंगो से पाँच पदों को लिखते जाएँ। ये रंग क्रमश: ज्ञान, दर्शन, विशुद्धि, आनन्द और शक्ति के केन्द्र माने गए हैं।

णमोकार मय मेरा जीवन बना दो।
चरणों की रज से मेरा मन सजा दो।।
मैं हूँ फूल छोटा तुम्हारे चमन का।
कहीं हर न ले जाए झोंका पवन का।।
चरणों की छाया में मुझको बिठा लो।
अरिहंत निज गाँव मुझको बुला लो।।
णमोकार मय ....

रहें देह में पर विदेही बने हों।
बंधन में रहकर भी बंध न सके हों।।
मैं बंधता रहा झूठे जग बंधनों में।
निराकार मुझको स्वयं में मिला लो।।
णमोकार मय ....

गहन तम है छाया जो विषयों में भूले।
कहाँ खो गया क्षण जो आतम को छू ले।।
हो सूरज धरा के उजाले दिखा दो।
हे आचार्य! मेरे दु:खों से बचा लो।।
णमोकार मय ....

अज्ञानता से भरी मेरी गागर।
तुम ज्ञान के वो असीमित हो सागर।।
आगम का अमृत हमें भी पिला दो।
उपाध्याय गुरुवर सत् पथ दिखा दो।।
णमोकार मय ....

हृदय के कमल में हे साधु विराजो।
आतम के अनुभव से परिचय करा दो।।
नमन है मेरा जग के सब साधुओं को।
नमन है नमन है नमनमय बना दो।।
णमोकार मय ....

२.ब सृष्टि का सनातन धर्म- जैन धर्म

जिन शब्द का विश्लेषण

'जिन' के द्वारा कहा गया धर्म अर्थात् जिन ने जिस धर्म का कथन किया, उपदेश दिया वह धर्म है, जैन धर्म। 'जिन' ईश्वरीय अवतार नहीं होते, वे स्वयं अपने पौरुष के बल पर स्वयं के काम - क्रोधादि विकारों को जीतकर जिन बनते हैं, 'जिन' शब्द का अर्थ होता है जीतने वाला। जो जिन बनते हैं, वे हम प्राणियों में से ही बनते हैं। प्रत्येक जीवात्मा परमात्मा बन सकता हैं जैसे दूध में घी शक्ति के रूप में विद्यमान हैं उसी प्रकार आत्मा में 'जिन' बनने की शक्ति विद्यमान है। विशेष साधना के बल से कर्मों को आत्मा से पृथक कर सभी जीव भगवान बन सकते हैं।

जैन धर्म और तीर्थंकर -

जैन धर्म अनादि काल से चला आ रहा है और आगे भी अनंतकाल तक चलेगा। यह धर्म किसी विशेष महापुरुष के द्वारा प्रवर्तित धर्म नहीं हैं अत: भगवान महावीर को जैन धर्म का संस्थापक मानना ठीक नहीं है। समय-समय पर आत्म साधना के द्वारा जिन्होंने जिनत्व को प्राप्त किया है ऐसे सर्वज्ञ भगवान द्वारा जिन धर्म का उपदेश दिया जाता रहा है।

उसी परम्परा के प्रत्येक काल में चौबीस - चौबीस तीर्थंकर एवं अनेक केवली भगवान द्वारा जिन धर्म को आगे बढ़ाया गया। भगवान महावीर इस युग के चौबीसवें तीर्थंकर थे। इन्होंने जिन धर्म की स्थापना नहीं की अपितु जिन धर्म का प्रवर्तन किया, उसके सिद्धान्तों से जन- जन को परिचित कराया।

जैन धर्म के मुख्य सिद्धान्त -

१. अहिंसा, २. प्राणी स्वातन्त्र्य, ३. ईश्वर कर्त्ता नहीं,
४. अवतार वाद नहीं, ५. अनेकान्त और स्याद्वाद, ६. अपरिग्रहवाद।

अहिंसा -

सृष्टि के सभी प्राणी हमारे जैसे सुख-दु:ख का वेदन करने वाले हैं, वे दु:खों से बचना चाहते हैं और सुख पाना चाहते हैं। अत: किसी भी प्राणी को मन वचन और काय से कष्ट नहीं पहुचाना ही श्रेष्ठ अहिंसा है।

अहिंसा शब्द हिंसा के अभाव को प्रदर्शित करता है। अत: हम हिंसा को समझ लें, द्रव्य हिंसा और भाव हिंसा के भेद से हिंसा दो प्रकार की है। अपने परिणामों में दूसरों को कष्ट पहुँचाने, मारने का भाव होना, क्रोधादि कषाय की तीव्रता होना भाव हिंसा है। भाव हिंसा होने पर अन्य का घात होना, पीड़ा पहुँचना द्रव्य हिंसा है।

हिंसा के चार भेद कहे हैं :-

१. संकल्पी हिंसा २. आरंभी हिंसा
३. उद्योगी हिंसा ४. विरोधी हिंसा

''...जीवन का आस्था से वास्ता होने पर रास्ता स्वयं, शास्ता हो कर सम्बोधित करता साधक को साथी बन, साथ देता है।''

''मैं अमुक जीव को मारूँगा'' ऐसा संकल्प करना संकल्पी हिंसा है। गृहस्थी संबंधी कार्यों में होने वाली हिंसा आरंभी हिंसा है। व्यापार, खेती आदि कार्यों में होने वाली हिंसा उद्योगी हिंसा है। अपने देश, धर्म, परिवार की रक्षा के उद्देश्य से हुई हिंसा विरोधी हिंसा है। हिंसा कर्म का त्याग ही अहिंसा धर्म है। अहिंसा कायरता नहीं, अपितु मानव में मानवता को प्रतिष्ठित करने का अनुष्ठान है।

प्राणी स्वातंत्र्य -

इस सृष्टि में रहने वाले प्रत्येक प्राणी में/आत्मा में भगवान/परमात्मा बनने की क्षमता है, चाहे वह एकेन्द्रिय पृथ्वीकायिक अथवा वनस्पतिकायिक आदि जीव ही क्यों न हो। जैसे कि स्वर्ण प्राप्ति हेतु (भूगर्भ से) उसके ऊपर पड़ी मिट्टी को हटाना(खोदना) पड़ता है, उसी प्रकार आत्मा पर पड़े कर्म रूप आवरण को हटाने पर परमात्मा दशा प्राप्त हो सकती है।

ईश्वर अकर्तृत्व –

इस सृष्टि को, सृष्टि में रहने वाले प्राणियों को, पर्वतों को, नदियों को करने वाला (बनाने वाला) कोई ईश्वर या ब्रह्मा नहीं है। यदि यह कहा जाए कि इन्हें ईश्वर ने बनाया तो फिर ईश्वर को किसने बनाया यह प्रश्न उठेगा। जिसका समाधान नहीं हैं, अत: यह सृष्टि और उसमें रहने वाले प्राणी सभी अनादि काल से हैं तथा भविष्य में अनंतकाल तक रहेंगे, इनका कोई स्रष्टा व विध्वंसक ईश्वर नहीं है।

प्राणियों की सुखी-दु:खी, अमीर-गरीब, जीवन-मरण, रोगी-निरोगी इत्यादि विभिन्न दशाओं को करने वाला कोई ईश्वर नहीं है वह तो उदासीन रूप से सब पदार्थों को जानने-देखने वाला मात्र है।

प्राणी जैसा अच्छा या बुरा कार्य/कर्म करता हैं उसी के अनुसार पुण्य, पाप कर्म प्रकृतियों का बंध होता है उन बंधी हुई कर्म प्रकृतियों के उदय आने पर सुख-दुख, जीवन-मरण आदि जीव की विभिन्न दशाएं होती हैं।

अवतारवाद नहीं –

भगवान धरती पर पुन: जन्म नहीं लेते। जिन्होंने कर्म रूपी शत्रुओं को जीतकर भगवत् दशा प्राप्त की है ऐसे जीव पुन: धरती के प्राणियों के उद्धार, कल्याण हेतु धरती पर जन्म नहीं लेते। जैसे दूध से घी बन जाने पर पुन: दूध रूप में परिवर्तन संभव नहीं हो सकता वैसे ही कर्म बंध के कारणों का अभाव होने पर भगवान का पुन: मनुष्य बनना संभव नहीं। पूर्व भव में जिन्होंने विशेष पुण्य किया था ऐसे संसारी जीव ही महापुरुष के रूप में धरती पर जन्म लेकर तीन लोक के जीवों का उपकार करते हैं जैसे तीर्थंकर ऋषभदेव, तीर्थंकर महावीर, बलभद्रश्रीराम, कामदेव हनुमान, चक्रवर्ती भरत, नारायण श्री कृष्ण आदि।

अनेकान्त और स्याद्वाद –

एक ही वस्तु में परस्पर विरोधी अनेक गुणधर्म पाए जाते हैं जैसे वस्तु नित्य भी है और अनित्य भी है, एक भी अनेक भी, सत् भी असत् भी आदि। इस बात को स्वीकारना अनेकान्त है। अत: वस्तु अनेकान्त रूप है।

अनेकान्तात्मक वस्तु के स्वरूप को कथन करने वाली शैली स्याद्वाद कहलाती है। इसका अर्थ कथंचित् किसी दृष्टि से, किसी अपेक्षा से वस्तु के स्वरूप का कथन करना जैसे वस्तु कथंचित् नित्य है कथंचित् अनित्य है।

अपरिग्रहवाद –

परिग्रह का अभाव (त्याग) सो अपरिग्रह है। मूर्च्छा भाव, आसक्ति भाव, पर पदार्थों का ममत्व मूलक संग्रह करना परिग्रह कहलाता है।

खेत, मकान, सोना, चाँदी, गाय आदि धन, गेहूँ आदि धान्य, दासी-दास, वस्त्रादि कुप्य और बर्तनादि भांड की अपेक्षा से परिग्रह के दस भेद कहे हैं। परिग्रह ही दु:ख का मूल स्रोत/कारण है। अत: दु:ख से बचने हेतु परिग्रह का त्याग करना चाहिए। इस ही का नाम अपरिग्रहवाद हैं। अपरिग्रहवाद ही सुख प्राप्ति का अचूक साधन है।

विशेष ध्यान रखने योग्य –

जैन धर्म हिन्दू धर्म नहीं है और ना ही हिन्दू धर्म की शाखा है। जैन धर्म एक स्वतंत्र धर्म है एवं सबसे प्राचीन धर्म है। जैनधर्म और हिन्दूधर्म में मूलभूत अंतर निम्न हैं –

जैन धर्म	हिन्दू धर्म
१. जिनेन्द्र द्वारा उपदिष्ट द्वादशांग रूपी श्रुतज्ञान ही प्रमाण भूत, सत्य हैं।	१. वेद, स्मृतिग्रन्थ, ब्राह्मणों के अन्य प्रमाण भूत एवं अपौरुषेय ग्रंथ प्रमाण हैं।
२. धार्मिक तत्त्व और सारणी स्पष्ट और निश्चित हैं।	२. परस्पर विरोधी अनेक सिद्धान्त हैं।
३. यह जगत् अनादि अनिधन है इसका कोई स्रष्टा नहीं है।	३. जगत का स्रष्टा ईश्वर हैं और यह जगत नष्ट भी हो जाता हैं।
४. प्रत्येक काल में (उ.अ.) में तीर्थंकर होते हैं, वे सत्य धर्म का उपदेश देते हैं।	४. सनातन धर्म ईश्वर की प्रेरणा से बह्मा ने प्रकट किया है।

५. मनुष्य ही मोक्ष प्राप्त कर सकता है देवता नहीं।
६. कर्म सूक्ष्म पौद्गलिक तत्त्व हैं जो आत्मा के साथ बंधते हैं एवं स्वयं फल देते हैं।
७. मुक्त जीव लोक के अग्रभाग पर स्थित रहते हैं।
८. अवतारवाद नहीं मानते हैं।
९. अपने शुभ कर्मों से सुख मिलता है।

५. देवता मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं।
६. कर्म एक अदृष्ट सत्ता है, जो ईश्वर के इशारे पर फल देता है।
७. मुक्त जीव बैकुण्ठ में अनंत काल तक सुख भोगता हैं।
८. अवतारवाद मानते हैं।
९. ईश्वर की कृपा से सुख मिलता है।

● हमारी मानसिक शक्तियाँ हमारे आत्मविश्वास और धैर्य पर अवलम्बित रहती हैं।
● हारना, लेकिन हार न मानना ही जिन्दगी का दूसरा नाम है।

जैन धर्म भारत का प्राचीन धर्म है, कुछ प्रमुख बिन्दु

१. मोहन जोदड़ों की खुदाई से प्राप्त मुहर पर भगवान ऋषभदेव का चिह्न अंकित है। यह सभ्यता ५००० वर्ष प्राचीन है।
२. हड़प्पा की खुदाई में एक नग्न मानव धड़ मिला है। नग्न मुद्रा कायोत्सर्ग मुद्रा है यह जैन मूर्ति है। यह सभ्यता भी लगभग ५००० वर्ष प्राचीन है।
३. कलिंगाधिपति सम्राट खारबेल द्वारा उदयगिरी खंडगिरी के हाथी गुफा में लिखाए गए लेख का प्रारंभ ''णमो अरहंतानं, णमो सव्व सिद्धानं'' से किया गया है। यह राजवंश ईसा से ४५० वर्ष पूर्व तक था।
४. मथुरा के कंकाली टीले में महत्त्वपूर्ण जैन पुरातत्व, ११० शिलालेख, एवं अन्य अनेक सामग्री प्राप्त हुई है जो जैन धर्म की प्राचीनता के अकाट्य प्रमाण उपस्थित करती है। इसका निर्माण ईसा के पूर्व ८०० वर्ष का माना जाता है।
५. वैदिक साहित्य में सर्वाधिक प्राचीन ऋग्वेद में अनेक स्थलों पर ऋषभदेव का, वातरशना केशी आदि मुनियों का वर्णन मिलता है। इन मुनियों का संबंध जैन श्रमणों से ही है। ऋग्वेद की अनेक ऋचाओं में प्रयुक्त ''अर्हन्'' शब्द भी जैन संस्कृति के पुरातन होने का परिचय देता है।
6. वेदों के अतिरिक्त श्रीमद् भागवत, मार्कण्डेय पुराण, कूर्म पुराण, वायु पुराण, अग्नि पुराण, ब्रह्मांड पुराण, बराह पुराण, विष्णु पुराण, स्कंध पुराण एवं बौद्ध ग्रन्थ धम्मपद, मंजुश्री मूलकल्प, न्याय बिन्दु, धर्मोत्तर प्रदीप में भी ऋषभदेव की स्तुति के साथ उनके परिजन एवं जीवन की घटनाओं का विस्तृत वर्णन मिलता है।

जिनवाणी स्तुति

चरणों में आ पड़ा हूँ, हे द्वादशांग वाणी।
मस्तक झुका रहा हूँ, हे द्वादशांग वाणी॥ टेक॥
मिथ्यात्व को नशाया, निज तत्त्व को बताया।
आपा पराया भासा, हो भानु के समानी॥ 1॥
षट् द्रव्य को बताया, स्याद्वाद को जताया।
भव-फन्द से छुड़ाया, सच्ची जिनेन्द्र वाणी॥ 2॥
रिपु चार मेरे मग में, जंजीर डाले पग में।
ठाडे हैं मोक्ष मग में, तकरार मोसों ठानी॥ 3॥
दे ज्ञान मुझको माता, इस जग से तोड़ूँ नाता।
होवे सुदर्शन साता, नहीं जग में तेला सानी ॥ 4॥

मेरे गुरुवर के लिए

गुरु ने जहाँ - जहाँ भी जोत जलाई है।
काले - काले बादलों में रोशनी-सी छाई है।
अखियों को खोल जरा ज्ञान के उजाले में।
रख विश्वास पूरा जग रखवाले में।
कितनी ही बार मैंने तुझे समझाई है।
गुरु के सिवा हर चीज पराई है ....
गुरु ने जहाँ-जहाँ भी .... ।
मुक्ति के बंधनों को बाँध पक्की डोर से,
आंधियाँ चलेंगी इन सब पर बड़ी जोर से।
क्योंकि इस रास्ते पर बड़ी कठिनाई है,
गुरु के सिवा हर चीज पराई है ...
गुरु ने जहाँ-जहाँ भी ....
एक बार सोच ले तू जीवन के अंधियारे में,
गुरु ही सहारा है इस जीवन के चौराहे में,
कितनी ही बार मैंने ठोकरें तो खाई हैं,
गुरु के सिवा हर चीज पराई है ....
गुरु ने जहाँ-जहाँ भी ....
तन मन में वैराग्य जिन के समाया है
शाश्वत सुख पाने छोड़ी जग माया है,
निर्मोही गुरुवर पर जनता रिझाई है
गुरु के सिवा हर चीज पराई है ....
गुरु ने जहाँ-जहाँ भी ....
संकटों से भरा गुरु मुक्ति पथ हमारा है
बीच भँवर में नैया तू ही तो सहारा है,
हँसी-खुशी आगे बढ़ो गुरु ने सिखाई है
गुरु के सिवा हर चीज पराई है ....
गुरु ने जहाँ-जहाँ भी ....

आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज की स्तुति

(मुनि नियमसागर)

विद्यासागर-विश्व-वन्द्य- श्रमणं, भक्त्या सदा संस्तुवे।
सर्वोच्चं यमिनं विनम्य परमं, सर्वार्थसिद्धिप्रदम्।।
ज्ञानध्यानतपोभिरक्त- मुनिपं, विश्वस्य विश्वाश्रियं।
साकारं श्रमणं विशाल-हृदयं, सत्यं शिवं सुन्दरम्।।

अर्थ: (विद्यासागर-विश्व-वन्द्य-श्रमणं) जो परमागम ज्ञान के ज्ञाता होने से ज्ञान के सागर हैं व विद्या के सागर होने से विश्ववंदनीय हैं तथा जो रत्नत्रय की साधना में श्रम करने वाले होने से श्रमण हैं। (परमं यमिनं) संयम में सर्वश्रेष्ठता होने से (सर्वोच्चं) सर्वोच्च हैं, (सर्वार्थसिद्धिप्रदं) परमार्थादि अर्थ सिद्धि के जो प्रदाता हैं अर्थात् रत्नत्रय के दाता हैं। (ज्ञानध्यानतपोभिरक्त) जो स्वयं ज्ञान में अर्थात् परमागम के श्रुताभ्यास में शुद्धोपयोग रूप आत्मा के ध्यान में, तप में अर्थात् अंतरंग व बहिरंग रूप बारह प्रकार से तपाराधना में तल्लीन रहते हैं व मुनि संघ के अधिनायक होकर मुनियों के आगमानुसार परिपालक हैं। (विश्वस्य विश्वाश्रियं) तथा जो विश्व अर्थात् लोक में रहकर लोक के आश्रय स्वरूप उपकारी गुरु हैं। (साकारं श्रमणं) रत्नत्रयादि समस्त परमार्थ के श्रेष्ठतम गुणों की साधना में सदा श्रमशील होने से साक्षात् श्रमण हैं। (विशालहृदयं) अध्यात्म तत्त्व के पारगामी होने से जो सदा विशाल हृदयी हैं। (सत्यं साकारं) इन सकल गुणों के आचरण करने वाले होने से साक्षात् सत्य के मूर्तिस्वरूप हैं। (शिवं साकारं) इस प्रकार साक्षात् सत्य की मूर्तिस्वरूप होने से जो स्वयं कल्याण के मूर्तिस्वरूप हैं। (सुन्दरम् साकारं) सत्य व शिव (आत्मकल्याण) इन दोनों का जिनमें एक साथ सद्भाव होने से बाह्य एवं अभ्यंतर सुन्दरता के मूर्ति रूप हैं, (विश्व-वन्द्य-श्रमणं) विश्ववन्द्य श्रमणस्वरूप आचार्य परमेष्ठी श्री विद्यासागर जी महाराज को (भक्त्या सदा) मैं हमेशा भक्ति (सिद्ध-श्रुत-आचार्य) के साथ (विनम्य)नमस्कार करके(संस्तुवे) उनके समस्त सद्गुणों का गुणोत्कीर्तन करता हूँ अर्थात् मैं रोमांचित होकर उनके उन सद्गुणों की स्तुति करता हूँ।

शिवभूति मुनिराज

किसी ग्राम में संसार, शरीर, भोगों से भयभीत एक शिवभूति नाम का पुरुष रहा करता था। नगर के निकट ही मुनि संघ को आया सुन वह उनके दर्शनार्थ पहुँचा। दर्शन के पश्चात् उसने आचार्य श्री से दु:खों से मुक्ति का उपाय पूछा- तब आचार्य श्री बोले हे भव्य प्राणी यदि तुम दु:खों से मुक्त होना चाहते हो तो श्रमणत्व / मुनित्व को अंगीकार करो। परम वैराग्य युक्त हो उसने मुनि दीक्षा ग्रहण की।

ज्ञान का क्षयोपशम कम होने के कारण गुरु जो भी पढ़ाते थे वह शीघ्र ही भूल जाते थे। अत: गुरु ने तुष मास भिन्नं इन अक्षरों का ही पाठ करने का उपदेश दिया। जिसे वे शिवभूति मुनिराज दिन-रात रटते थे। वे आत्मा को शरीर तथा कर्मों के समूह से भिन्न जानते। किन्तु शब्द ज्ञान उनके पास नहीं था। एक दिवस वे आहारचर्या को निकले किन्तु रास्ते में गुरु वाक्य भूल गए तथा देखा कि एक महिला दाल रूप परिणत उड़दों को पानी में डुबा कर तुसों (छिलकों) को पृथक् कर रही है। देखकर उन्होंने पूछा आप यह क्या कर रही हों? उन्होंने बताया मैं दाल और छिलकों को पृथक् कर रही हूँ क्योंकि दाल पृथक् है और छिलका पृथक् है। इतना सुनते ही बोध हो गया। इसी प्रकार मेरी आत्मा पृथक् है और शरीर पृथक् है। वे वापस अपने स्थान में लौट आए और आत्मध्यान में लीन हो गए। कुछ ही क्षणों में उन्हें केवलज्ञान की प्राप्ति हो गई। गुरु से पहले ही भावों की निर्मलता से शिष्य ने केवलज्ञान प्राप्त कर लिया। केवलज्ञानी हो अनेक भव्य जीवों को धर्म का उपदेश प्रदान कर मोक्ष चले गए।

सारांश : चारित्र के प्रति सच्ची आस्था होने पर निश्चित सुख की उपलब्धि होती है। भले ही ज्ञान कम हो। आचार्य श्री कहते हैं - चारित्र में निर्मलता होने पर ज्ञान स्वयमेव प्रकट हो जाता है।

।। दर्शन पाठ ।।

दर्शनं देव देवस्य, दर्शनं पापनाशनम्।
दर्शनं स्वर्गसोपानं, दर्शनं मोक्षसाधनम्।। १ ।।

अर्थ : (देव देवस्य) देवों के भी देव देवाधिदेव का **(दर्शनं)** दर्शन/अवलोकन **(पाप-नाशनम्)** पापों का नाश करने वाला, **(दर्शनं)** दर्शन **(स्वर्ग-सोपानं)** स्वर्ग की सीढ़ी और **(दर्शनं)** दर्शन **(मोक्ष-साधनम्)** मोक्ष का साधन है।

दर्शनेन जिनेन्द्राणां, साधूनां वन्दनेन च।
न चिरं तिष्ठते पापं, छिद्रहस्ते यथोदकम्।। २ ।।

अर्थ : (जिनेन्द्राणां) जिनेन्द्रदेव के **(दर्शनेन)** दर्शन से **(च)** और **(साधूनां)** साधुओं की **(वन्दनेन)** वंदना से **(पापं)** पाप **(चिरं)** अधिक समय तक **(छिद्रहस्ते)** छिद्र सहित हाथों में **(उदकम्)** जल ज्यादा देर तक नहीं ठहरता अर्थात् नष्ट हो जाता है।

वीतराग-मुखं दृष्ट्वा, पद्म-राग-समप्रभम्।
जन्म-जन्म-कृतं पापं, दर्शनेन विनश्यति।। ३ ।।

अर्थ : (पद्मरागसमप्रभम्) पद्मराग मणि के समान प्रभायुक्त **(वीतराग मुखं)** वीतराग भगवान् के मुख को **(दृष्ट्वा)** देखकर **(जन्म-जन्मकृतं)** जन्म-जन्मान्तर में किए **(पापं)** पाप **(दर्शनेन)** दर्शन करने से **(विनश्यति)** नष्ट हो जाते हैं।

दर्शनं जिनसूर्यस्य, संसारध्वान्त-नाशनम्।
बोधनं चित्तपद्मस्य, समस्तार्थ-प्रकाशनम्।। ४ ।।

अर्थ : (जिनसूर्यस्य) जिनेन्द्ररूपी सूर्य का **(दर्शनं)** दर्शन **(संसारध्वान्त-नाशनम्)** संसार सम्बन्धी अंधकार का नाश करने वाला, **(चित्तपद्मस्य बोधनं)** मनरूपी कमल का विकासक तथा **(समस्तार्थप्रकाशनम्)** समस्त पदार्थों का प्रकाशक है।

दर्शनं जिनचन्द्रस्य, सद्धर्मामृत-वर्षणम्।
जन्मदाह-विनाशाय, वर्धनं सुखवारिधेः।। ५ ।।

अर्थ : (जिनचन्द्रस्य) जिनेन्द्ररूपी चन्द्रमा का **(दर्शनं)** दर्शन **(जन्मदाह-विनाशाय)** जन्मरूपी ताप को नाश करने के लिए **(सुखवारिधेः)** सुखरूपी समुद्र की **(वर्धनम्)** वृद्धि करने वाला और **(सद्धर्मामृतवर्षणम्)** समीचीन-धर्मरूपी अमृत की वर्षा करने वाला है।

जीवादितत्त्वप्रतिपादकाय, सम्यक्त्वमुख्याष्ट-गुणार्णवाय।
प्रशान्तरूपाय दिगम्बराय, देवाधिदेवाय नमो जिनाय।। ६ ।।

अर्थ : (जीवादितत्त्व-प्रतिपादकाय) जीवादि सात तत्त्वों के प्रतिपादक **(सम्यक्त्वमुख्याष्टगुणार्णवाय)** सम्यक्त्वादि आठ मुख्य गुणों के समुद्र **(प्रशान्तरूपाय)** प्रशान्तरूप **(दिगम्बराय)** दिगम्बर **(देवाधिदेवाय)** देवाधि अर्हन्त प्रभु **(जिनाय)** जिनेन्द्रदेव के लिए **(नमः)** नमस्कार हो।

चिदानन्दैक-रूपाय, जिनाय परमात्मने।
परमात्म-प्रकाशाय, नित्यं सिद्धात्मने नमः।।७।।

अर्थ : (चिदानन्दैक-रूपाय) आत्मानन्द स्वरूप **(जिनाय)** कर्मों को जीतने, वाले जिनेन्द्र **(परमात्मन)** उत्कृष्ट आत्मा **(परमात्म प्रकाशाय)** परम आत्म तत्त्व के प्रकाशक **(सिद्धात्मने)** सिद्ध आत्मा के लिए **(नित्यं)** हमेशा **(नमः)** नमस्कार हो।

अन्यथा शरणं नास्ति, त्वमेव शरणं मम।
तस्मात् कारुण्यभावेन, रक्ष-रक्ष जिनेश्वर!।।८।।

अर्थ : (अन्यथा) आपके सिवाय अन्य कोई **(शरणं नास्ति)** शरण नहीं है **(त्वम् एव)** आप ही **(मम शरणं)** मेरे लिए शरण हैं **(तस्मात्)** इसलिए **(कारुण्यभावेन)** दया भाव से **(मम रक्ष रक्ष जिनेश्वर)** हे जिनेन्द्र देव! मेरी रक्षा करो, मेरी रक्षा करो।

न हि त्राता न हि त्राता, न हि त्राता जगत्त्रये।
वीतरागात् परो देवो, न भूतो न भविष्यति।।९।।

अर्थ : (जगत्त्रये) तीन लोक में **(वीतरागत्परः देवः)** वीतराग अर्हन्त देव के सिवाय और कोई **(न हि त्राता)** रक्षा करने वाला नहीं है **(न हि त्राता)** रक्षा करने वाला नहीं है **(न हि त्राता)** रक्षा करने वाला नहीं है **(न भूतो)** न भूतकाल में हुआ **(न भविष्यति)** और न आगे होगा।

जिने भक्तिर्जिने भक्तिर्जिने भक्तिर्दिने दिने।
सदा मेऽस्तु सदा मेऽस्तु सदा मेऽस्तु भवे भवे।।१०।।

अर्थ : (दिने दिने भवे भव) प्रतिदिन भव-भव में **(मे जिने भक्तिः)** मेरी जिनेन्द्र भगवान् में भक्ति **(सदा मेऽस्तु)** सदा होवे **(मे जिने भक्तिः)** मेरी जिनेन्द्र भगवान् में भक्ति **(सदा मेऽस्तु)** सदा होवे **(मे जिने भक्तिः)** मेरी जिनेन्द्र भगवान् में भक्ति **(सदा मेऽस्तु)** सदा होवे।

जिनधर्मविनिर्मुक्तो, मा भवेच्-चक्रवर्त्यपि।
स्याच्चेटोऽपि दरिद्रोऽपि, जिनधर्मानुवासितः।।११।।

अर्थ : (जिनधर्म-विनिर्मुक्तः) जिनधर्म से रहित **(चक्रवर्त्यपि)** चक्रवर्ती भी **(मा भवेत्)** नहीं होऊँ **(स्यात् चेटोऽपि)** भले ही दास भी हो जाऊँ **(दरिद्रोऽपि)** दरिद्र/गरीब भी हो जाऊँ, किन्तु मेरा जीवन **(जिनधर्मानु-वासितः)** जिनधर्म से सुवासित हो।

जन्म-जन्मकृतं पापं, जन्मकोटिमुपार्जितम्।
जन्म-मृत्यु-जरा-रोगो, हन्यते जिनदर्शनात्।।१२।।

अर्थ : (जिनदर्शनात्) जिनेन्द्र भगवान् का दर्शन **(जन्म-जन्म कृतम्)** जन्म-जन्मान्तर में किए गए **(जन्मकोटि-मुपार्जितम्)** करोड़ों जन्मों में उपार्जित **(पापम्)** पाप और **(जन्म-मृत्यु-जरारोग)** जन्म-मरण-बुढ़ापारूपी रोग को **(हन्यते)** नष्ट करता है।

अद्याभवत् सफलता नयन-द्वयस्य,
देव! त्वदीय-चरणाम्बुज-वीक्षणेन।
अद्य त्रिलोक-तिलक! प्रतिभासते मे,
संसार-वारिधिरयं चुलुक-प्रमाणः।।१३।।

अर्थ : (देव!) हे जिनदेव! **(त्वदीय)** आपके **(चरणाम्बुजवीक्षणेन)** चरण कमल के देखने से **(अद्य)** आज **(मे नयनद्वयस्य)** मेरे दोनों नयन की **(सफलता अभवत्)** सफलता हुई **(त्रिलोक-तिलक)** हे तीन लोक के तिलक स्वरूप! **(अद्य मे)** आज मेरा **(अयं)** यह **(संसारवारिधिः)** संसाररूपी समुद्र **(चुलुकप्रमाणः)** चुल्लू प्रमाण **(प्रतिभासते)** लगता है/प्रतिभासित होता है।

शिक्षाप्रद दोहावली

सागर का जल क्षार क्यों, सरिता मीठी सार।
बिन श्रम संग्रह अरुचि है, रुचिकर श्रम उपकार ॥ 1 ॥
उन्नत बनने नत बनो, लघु से राघव होय।
कर्ण बिना भी धर्म से, विजयी पाण्डव होय ॥ 2 ॥
नहीं सर्वथा व्यर्थ है, गिरना ही परमार्थ।
देख गिरे को हम जगे, सही करे पुरुषार्थ ॥ 3 ॥
कौरव रव-रव में गए, पाण्डव क्यों शिवधाम।
स्वार्थ और परमार्थ का, और कौन परिणाम ॥ 4 ॥
भूल नहीं पर भूलना, शिवपथ में वरदान।
भूल नदी गिरि को करे, सागर का संधान ॥ 5 ॥
दूर दुराशय से रहो, सदा सदाशय पूर।
आश्रय दो धन अभय दो, आश्रय से जो दूर ॥ 6 ॥
सूरज दूरज हो भले, भरी गगन में धूल।
पर सर में नीरज खिले, धीरज हो भरपूर ॥ 7 ॥
ईश दूर पर मैं सुखी, आस्था लिए अभंग।
ससूत्र बालक खुश रहे, नभ में उड़े पतंग ॥ 8 ॥
प्रभु दर्शन फिर गुरु कृपा, तदनुसार पुरुषार्थ।
दुर्लभ जग में तीन ये, मिले सार परमार्थ ॥ 9 ॥
अन्त किसी का कब हुआ, अनंत सब हे सन्त।
पर सब मिटता सा लगे, पतझड़ पुनः वसन्त ॥ 10 ॥
ज्ञायक बन गायक नहीं, पाना है विश्राम।
लायक बन नायक नहीं, जाना है शिवधाम ॥ 11 ॥
सूक्ष्म वस्तु यदि न दिखे, उनका नहीं अभाव।
तारा राजी रात में, दिनमें नहीं दिखाव ॥ 12 ॥
लघु कंकर भी डूबता, तिरे काष्ठ स्थूल।
क्यों मत पूछो तर्क से, स्वभाव रहता दूर ॥ 13 ॥
कल्प काल से चल रहे, विकल्प ये संकल्प।
अल्प काल भी मौन ले, चलता अन्तर्जल्प ॥ 14 ॥
सुचिर काल से सो रहा, तन का करता राग।
ऊषा सम नरजन्म है, जाग सके तो जाग ॥ 15 ॥
दिन का हो या रात का, सपना सपना होय।
सपना अपना सा लगे, किन्तु न अपना होय ॥ 16 ॥
दोष रहित आचरण से, चरण पूज्य बन जाए।
चरण धूल तक सर चढ़े, मरण पूज्य बन जाये ॥ 17 ॥
एक साथ दो बैल तो, मिलकर खाते घास।
लोकतंत्र पा क्यों लड़ो, क्यों आपस में त्रास ॥ 18 ॥
बूँद-बूँद के मिलन से, जल में गति आ जाये
सरिता बन सागर मिले, सागर बूँद समाय ॥ 19 ॥

अम्मा-अम्मा

अम्मा, अम्मा मुझको, मुझको ।
एक छोटा-सा कलश दिला दो ना
कलश भरुंगा, अभिषेक करूंगा ।।१।।
अम्मा, अम्मा ...

एक छोटी-सी पुस्तक दिला दो न ।
पुस्तक पढूंगा, स्वाध्याय करूंगा ।।२।।
अम्मा, अम्मा ...

इक छोटी-सी थाली दिला दो न
थाली सजाऊंगा, पूजा रचाऊंगा ।।३।।
अम्मा अम्मा ...

इक छोटी-सी आरती दिला दो न
आरती करूंगा, भक्ति रचूंगा ।।४।।
अम्मा, अम्मा ...

इक छोटी-सी माला दिला दो ना
जाप करुंगा, पुण्य बढ़ाऊंगा ।।५।।
अम्मा, अम्मा ...

इक छोटी-सी सायकिल दिला दो न
सायकिल चलाऊँगा, पाठशाला जाऊँगा ।।६।।
अम्मा, अम्मा ...

इक छोटी-सी कटोरी दिला दो न
चन्दन रखूँगा, तिलक लगाऊँगा ।।७।।
अम्मा, अम्मा ...

इक छोटी-सी पिच्छी दिला दो न
पिच्छी लेकर दीक्षा लूँगा, साधना करूँगा ।।८।।
अम्मा, अम्मा ...

इक छोटा-सा कमण्डलू दिला दो न
कमण्डलू भरूँगा, चर्या करूँगा ।।१०।।
अम्मा, अम्मा ...